30/12/2025

भारतीय राजनीति: विभाजन की खाइयों से महाविनाश तक की यात्रा

भारतीय लोकतंत्र की यात्रा हमेशा से उतार-चढ़ाव भरी रही है। स्वतंत्रता के बाद से ही देश में विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपनी विचारधाराओं को स्थापित किया और जनता के बीच अपनी पहचान बनाई। लेकिन पिछले कुछ दशकों में राजनीति का स्वरूप काफी बदल गया है। जहां पहले नीतियों और विकास की बात होती थी, वहीं अब सत्ता की भूख और वोट बैंक की राजनीति हावी हो गई है।

आज की राजनीतिक परिस्थिति को देखकर ऐसा लगता है मानो पुरानी मूल्यवान परंपराएं फिर से जीवित हो गई हों। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान जिस तरह विभिन्न गुट एक साथ मिलकर काम करते थे, उसी तरह आज भी राजनीतिक दल गठबंधन बनाकर सत्ता में आने की कोशिश करते हैं। लेकिन फर्क यह है कि पहले एकता का उद्देश्य देश की आजादी थी, जबकि आज का उद्देश्य केवल सत्ता हासिल करना है।

राजनीतिक गुटबाजी का उदय

भारतीय राजनीति में विभिन्न गुटों का निर्माण कोई नई बात नहीं है। आजादी के तुरंत बाद से ही कांग्रेस पार्टी में आंतरिक गुटबाजी देखने को मिलती थी। नेहरू, पटेल, आजाद जैसे नेताओं के अपने-अपने समर्थक थे। लेकिन उस समय ये मतभेद देश के विकास को प्रभावित नहीं करते थे। सभी नेता व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं से ऊपर उठकर राष्ट्र हित को प्राथमिकता देते थे।

1967 के चुनावों के बाद भारतीय राजनीति में एक नया मोड़ आया। कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारें बनीं और क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ। इसके बाद से राजनीतिक गुटबाजी ने एक नया आयाम प्राप्त किया। हर राज्य में स्थानीय मुद्दों को लेकर नए दल बनने लगे और राष्ट्रीय स्तर पर ये दल अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगे।

आज की तारीख में भारतीय संसद में सैकड़ों छोटे-बड़े राजनीतिक दल हैं। कुछ दल राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता प्राप्त हैं तो कुछ केवल क्षेत्रीय स्तर पर सक्रिय हैं। इन सभी गुटों का अपना एक एजेंडा है, अपनी विचारधारा है और अपना वोट बैंक है। लेकिन चुनाव के समय ये सभी गुट अपनी विचारधारा को किनारे रखकर सत्ता की लालच में एक-दूसरे के साथ गठबंधन बना लेते हैं।

खाइयों में उतरी राजनीति

भारतीय राजनीति आज जिन खाइयों में फंसी है, वो किसी युद्ध के मैदान से कम नहीं हैं। राजनीतिक दल एक-दूसरे के खिलाफ इस तरह लड़ रहे हैं मानो कोई सैन्य युद्ध चल रहा हो। चुनाव प्रचार के दौरान जो भाषा इस्तेमाल की जाती है, जो आरोप-प्रत्यारोप लगाए जाते हैं, वो किसी सभ्य समाज की राजनीति का हिस्सा नहीं होने चाहिए।

सोशल मीडिया के युग में यह खाई और भी गहरी हो गई है। राजनीतिक दलों के आईटी सेल दिन-रात विरोधियों के खिलाफ मोर्चा खोले रहते हैं। फेक न्यूज, अफवाहें, और व्यक्तिगत हमले आम बात हो गए हैं। इस खाई में सच्चाई, नैतिकता और मर्यादा कहीं खो गई है।

जनता भी इस खाई में विभाजित हो गई है। लोग अब नीतियों और विकास के आधार पर नहीं, बल्कि भावनाओं और पहचान के आधार पर वोट देते हैं। धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र के नाम पर वोट मांगे जाते हैं और दिए भी जाते हैं। यह विभाजन समाज के हर स्तर पर दिखाई देता है - परिवारों में, दोस्तों में, सहकर्मियों में।

राजनीतिक बहस अब तर्क और तथ्यों पर आधारित नहीं रहीं। लोग अपनी पसंदीदा पार्टी का अंधा समर्थन करते हैं और विरोधी दलों की हर बात को गलत मानते हैं। यह मानसिकता लोकतंत्र के लिए खतरनाक है क्योंकि एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए आलोचनात्मक सोच और खुले विचार-विमर्श की जरूरत होती है।

सत्ता की लालसा

राजनीतिक दलों में सत्ता की इतनी भूख है कि वे किसी भी हद तक जा सकते हैं। नैतिकता, सिद्धांत और विचारधारा सब कुछ सत्ता के आगे गौण हो जाते हैं। जो नेता कल तक एक-दूसरे को भ्रष्ट और अयोग्य बता रहे थे, वही आज गठबंधन में साथ हैं। यह दोमुंहापन आम जनता को निराश करता है और राजनीति के प्रति अविश्वास पैदा करता है।

सत्ता की इस लालसा में राजनेता जनता के मुद्दों को भूल जाते हैं। चुनाव से पहले जो वादे किए जाते हैं, वो सत्ता में आने के बाद भुला दिए जाते हैं। विकास की बातें केवल चुनावी भाषण तक सीमित रह जाती हैं। गरीबी, बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे वास्तविक मुद्दे पीछे छूट जाते हैं।

राजनेताओं की इस हरकतों को देखकर आम जनता की प्रतिक्रिया स्वाभाविक है। लोगों का राजनीति और राजनेताओं से विश्वास उठता जा रहा है। मतदाता प्रतिशत में गिरावट इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। खासकर शहरी और शिक्षित वर्ग में यह निराशा ज्यादा दिखती है।

लोकतंत्र का संकट

भारतीय लोकतंत्र आज एक गंभीर संकट से गुजर रहा है। यह संकट किसी बाहरी ताकत से नहीं बल्कि हमारी अपनी राजनीतिक व्यवस्था से उत्पन्न हुआ है। जब राजनीति का उद्देश्य जनसेवा से हटकर सत्ता और धन का संग्रह हो जाता है, तो लोकतंत्र खतरे में पड़ जाता है।

संस्थाओं की स्वायत्तता पर सवाल उठने लगे हैं। चुनाव आयोग, न्यायपालिका, मीडिया जैसी संस्थाएं जो लोकतंत्र के स्तंभ हैं, उन पर भी दबाव की बातें सुनाई देती हैं। जब ये संस्थाएं अपनी निष्पक्षता खो देती हैं, तो लोकतंत्र का ढांचा कमजोर हो जाता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर भी अंकुश लगते दिख रहे हैं। पत्रकार, लेखक, कलाकार जो सत्ता की आलोचना करते हैं, उन्हें देशद्रोही तक कहा जाता है। यह प्रवृत्ति लोकतंत्र के मूल सिद्धांतों के विपरीत है। एक स्वस्थ लोकतंत्र में असहमति और आलोचना का सम्मान होना चाहिए।

राजनीतिक महाप्रलय की ओर

यदि यही स्थिति जारी रही तो भारतीय राजनीति एक भयानक संकट की ओर बढ़ रही है। जब समाज धर्म, जाति, भाषा की खाइयों में बुरी तरह बंट जाएगा, जब संस्थाएं अपनी विश्वसनीयता खो देंगी, जब जनता का राजनीति से पूरी तरह मोहभंग हो जाएगा - तब एक राजनीतिक महाप्रलय की स्थिति बन सकती है।

इतिहास गवाह है कि जब लोकतांत्रिक व्यवस्थाएं विफल होती हैं, तो अराजकता या तानाशाही का मार्ग खुल जाता है। यूरोप में बीसवीं शताब्दी में यही हुआ था। कमजोर लोकतंत्र और राजनीतिक अस्थिरता ने फासीवाद और नाजीवाद को जन्म दिया।

भारत में भी खतरे के संकेत दिख रहे हैं। भीड़तंत्र की घटनाएं बढ़ रही हैं। कानून को अपने हाथ में लेने की प्रवृत्ति बढ़ी है। सांप्रदायिक हिंसा की खबरें आम हो गई हैं। ये सब एक असंतुलित समाज के लक्षण हैं।

समाधान की दिशा

हालांकि स्थिति गंभीर है, लेकिन निराशा का कोई कारण नहीं है। भारतीय समाज ने इतिहास में कई बड़े संकटों का सामना किया है और हर बार मजबूती से उबरा है। आज भी हम इस राजनीतिक संकट से उबर सकते हैं, लेकिन इसके लिए सामूहिक प्रयास की जरूरत है।

सबसे पहले, नागरिकों को अधिक जागरूक और जिम्मेदार बनना होगा। अंधभक्ति छोड़कर तर्कसंगत सोच अपनानी होगी। राजनेताओं को उनके काम के आधार पर जज करना होगा, न कि उनकी बातों के आधार पर। मतदान का अधिकार सोच-समझकर इस्तेमाल करना होगा।

राजनीतिक दलों को भी आत्ममंथन करने की जरूरत है। उन्हें समझना होगा कि अल्पकालिक लाभ के लिए समाज को विभाजित करना दीर्घकाल में सबके लिए नुकसानदायक है। नीति-आधारित राजनीति की ओर लौटना होगा।

मीडिया की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। निष्पक्ष और जिम्मेदार पत्रकारिता से जनता को सही जानकारी मिल सकती है। सनसनीखेज और पक्षपातपूर्ण रिपोर्टिंग से बचना होगा।

शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार की जरूरत है। स्कूलों और कॉलेजों में नागरिक शास्त्र और राजनीति विज्ञान को गंभीरता से पढ़ाया जाना चाहिए। युवाओं को लोकतांत्रिक मूल्यों और संवैधानिक सिद्धांतों की समझ होनी चाहिए।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र एक नाजुक मोड़ पर खड़ा है। एक तरफ राजनीतिक महाविनाश का खतरा है तो दूसरी तरफ सुधार और पुनर्जागरण की संभावना। यह हम सब पर निर्भर करता है कि हम कौन सा रास्ता चुनते हैं। यदि हम अपनी जिम्मेदारियों को समझें और सकारात्मक बदलाव के लिए प्रयास करें, तो भारतीय लोकतंत्र न केवल इस संकट से उबरेगा बल्कि और मजबूत होकर उभरेगा।

इतिहास हमें सिखाता है कि संकट के समय में ही समाज की असली ताकत सामने आती है। आज जरूरत है कि हम सब मिलकर राजनीतिक गुटबाजी की खाइयों को पाटें, सत्ता की अंधी दौड़ को रोकें और एक स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना करें। यही हमारे पूर्वजों के स्वतंत्रता संग्राम के सपने के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

विपरीत दृष्टिकोण: भारतीय राजनीति का यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य

भारतीय राजनीति पर चर्चा करते समय अक्सर एक निराशावादी और आलोचनात्मक रुख अपनाया जाता है। राजनीतिक गुटबाजी, विभाजनकारी राजनीति, और भ्रष्टाचार की बातें इतनी आम हो गई हैं कि हम वास्तविक प्रगति को नजरअंदाज कर देते हैं। लेकिन क्या वाकई भारतीय लोकतंत्र संकट में है? या फिर यह केवल एक अतिरंजित धारणा है जो मीडिया और बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर पेश की जाती है?

लोकतंत्र का विकास, पतन नहीं

पहली बात तो यह समझनी होगी कि राजनीतिक बहस और मतभेद लोकतंत्र की कमजोरी नहीं बल्कि ताकत हैं। जब विभिन्न विचारधाराओं के लोग एक मंच पर अपनी बात रखते हैं, तो यह दर्शाता है कि लोकतांत्रिक प्रक्रिया जीवित और सक्रिय है। स्वतंत्रता के बाद के शुरुआती दशकों में एक दल का प्रभुत्व था, जिसे अक्सर आदर्श काल के रूप में देखा जाता है। लेकिन वास्तव में वह एकदलीय शासन की स्थिति थी, जो लोकतंत्र के लिए स्वस्थ नहीं थी।

आज भारत में क्षेत्रीय दलों का उभरना, गठबंधन सरकारों का बनना, और विभिन्न वर्गों की आवाज का संसद में पहुंचना वास्तव में लोकतंत्र की परिपक्वता का संकेत है। हर राज्य की अपनी विशिष्ट समस्याएं हैं और क्षेत्रीय दल उन समस्याओं को राष्ट्रीय मंच पर लाते हैं। यह विविधता भारत जैसे विशाल और बहुसांस्कृतिक देश के लिए आवश्यक है।

गुटबाजी नहीं, प्रतिनिधित्व

जिसे हम राजनीतिक गुटबाजी कहते हैं, वह दरअसल विविध समाज का राजनीतिक प्रतिनिधित्व है। भारत में 130 करोड़ से अधिक लोग रहते हैं, जो विभिन्न भाषाएं बोलते हैं, विभिन्न धर्मों को मानते हैं, और विभिन्न सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि से आते हैं। यह अपेक्षा करना कि सभी एक ही राजनीतिक विचारधारा को मानें, अव्यावहारिक और अलोकतांत्रिक होगा।

विभिन्न राजनीतिक दलों का अस्तित्व यह सुनिश्चित करता है कि हर वर्ग, हर समुदाय की आवाज सुनी जाए। दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, महिलाएं - सभी के अपने प्रतिनिधि हैं जो उनके मुद्दों को उठाते हैं। यह सामाजिक न्याय और समावेशी लोकतंत्र की दिशा में महत्वपूर्ण कदम है।

मीडिया द्वारा बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुति

आज का मीडिया, खासकर सोशल मीडिया, हर छोटी बात को बड़ा बनाकर पेश करता है। एक राजनेता का एक विवादास्पद बयान पूरे दिन सुर्खियों में रहता है और ऐसा लगता है मानो देश में कोई बड़ा संकट आ गया हो। लेकिन वास्तविकता यह है कि सरकारें अपना काम कर रही हैं, योजनाएं लागू हो रही हैं, और विकास का पहिया घूम रहा है।

पिछले दो दशकों में भारत ने अभूतपूर्व विकास किया है। बुनियादी ढांचे में सुधार, डिजिटल क्रांति, गरीबी में कमी, शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार - ये सब राजनीतिक व्यवस्था की उपलब्धियां हैं। लेकिन इन सकारात्मक पहलुओं को उतनी प्रमुखता से नहीं दिखाया जाता जितना कि राजनीतिक विवादों को।

तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

यदि हम अन्य लोकतांत्रिक देशों से तुलना करें, तो भारतीय लोकतंत्र काफी मजबूत नज़र आता है। अमेरिका में राजनीतिक ध्रुवीकरण भारत से कहीं अधिक है। यूरोप के कई देशों में चरमपंथी दलों का उभार हो रहा है। ब्रिटेन में ब्रेक्सिट ने समाज को गहराई से विभाजित कर दिया। इन सबके बावजूद कोई यह नहीं कहता कि पश्चिमी लोकतंत्र खतरे में हैं।

भारत में हर पांच साल में शांतिपूर्ण तरीके से सत्ता का हस्तांतरण होता है। यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं है। दुनिया के कई देशों में चुनाव हिंसा, धांधली और विवादों से भरे होते हैं। भारत में चुनाव आयोग की विश्वसनीयता अभी भी काफी मजबूत है और चुनाव प्रक्रिया अपेक्षाकृत निष्पक्ष है।

युवा लोकतंत्र की चुनौतियां

यह भी याद रखना जरूरी है कि भारत अभी भी एक युवा लोकतंत्र है। हमें आजाद हुए केवल 78 वर्ष हुए हैं। पश्चिमी देशों को अपने लोकतंत्र को परिपक्व करने में सदियां लगीं। उन्होंने गृहयुद्ध, विश्वयुद्ध, और तानाशाही के दौर देखे। इसकी तुलना में भारत ने अपेक्षाकृत कम समय में एक स्थिर लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित की है।

राजनीतिक परिपक्वता समय के साथ आती है। आज जो समस्याएं हमें विकराल लगती हैं, वो वास्तव में विकास प्रक्रिया का हिस्सा हैं। हर समाज को अपनी राजनीतिक यात्रा में इन चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

जनता की समझदारी

भारतीय मतदाता को अक्सर भावनाओं में बहने वाला बताया जाता है। लेकिन चुनाव परिणाम दिखाते हैं कि जनता काफी समझदार है। जो सरकारें काम नहीं करतीं, उन्हें मतदाता सत्ता से बाहर कर देते हैं। राज्य और केंद्र में अलग-अलग दलों को वोट देकर मतदाता अपनी परिपक्वता दिखाते हैं।

हाल के वर्षों में मतदाता प्रतिशत में वृद्धि हुई है, खासकर युवाओं और महिलाओं में। यह दर्शाता है कि लोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं। यदि राजनीतिक व्यवस्था वाकई इतनी भ्रष्ट और निराशाजनक होती, तो लोग वोट देने ही नहीं आते।

संस्थागत मजबूती

भारतीय संविधान ने एक मजबूत संस्थागत ढांचा प्रदान किया है। न्यायपालिका, चुनाव आयोग, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, मानवाधिकार आयोग - ये सभी संस्थाएं अपना काम कर रही हैं। कभी-कभी विवाद होते हैं, लेकिन यह किसी भी लोकतंत्र में स्वाभाविक है। महत्वपूर्ण यह है कि ये संस्थाएं मौजूद हैं और कार्यशील हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने कई मौकों पर सरकार के फैसलों को चुनौती दी है और जनहित में निर्णय दिए हैं। यह न्यायिक स्वतंत्रता का प्रमाण है। मीडिया में विविधता है और विभिन्न विचारधाराओं को स्थान मिलता है।

निष्कर्ष

भारतीय राजनीति में निश्चित रूप से सुधार की गुंजाइश है, लेकिन इसे संकटग्रस्त या पतन की ओर जाता हुआ बताना अतिशयोक्ति है। हमें अपनी उपलब्धियों को भी स्वीकार करना चाहिए और राजनीतिक प्रक्रिया में विश्वास रखना चाहिए।

निराशावाद से कुछ हासिल नहीं होता। बदलाव की प्रक्रिया धीमी लेकिन निरंतर है। भारतीय लोकतंत्र जीवंत, गतिशील और लगातार विकसित हो रहा है। यही उसकी सबसे बड़ी ताकत है।